ISSN:0975-5756

कला - वैभव
Kalā - Vaibhav

(UGC CARE Listed Journal)

संयुक्तांक 25-26 (वर्ष 2018-19, 2019-20)
विभागीय शोध- जर्नल (रेफरीड)

प्रधान संपादक
डॉ. मंगलानंद झा
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)

ISO 9001:2015 प्रमाणित

वित्तीय सहयोग : विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली

ISSN : 0975 - 5756

कला–वैभव

KALA-VAIBHAVA

(UGC CARE Listed Journal)

संयुक्तांक 25–26 (वर्ष 2018–19, 2019–20)

❖ **संरक्षक**

- डॉ. मोक्षदा (ममता) चन्द्राकर,
  (पद्मश्री से सम्मानित),
  कुलपति,
  इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)।

❖ **सम्पादक मण्डल**

- प्रोफेसर (डॉ.) इन्द्रदेव तिवारी,
  अधिष्ठाता – कला संकाय,
  इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)।

- पद्मश्री श्री अरुण कुमार शर्मा,
  सेवानिवृत्त, अधीक्षण पुरातत्त्व विद् एवं
  पूर्व पुरातात्त्विक सलाहकार, छ.ग. शासन, रायपुर।
- आचार्य (डॉ.) रमेन्द्रनाथ मिश्र,
  इतिहासकार, रायपुर।
- डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी,
  पूर्व विभागाध्यक्ष,
  प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
  इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)।
- प्रोफेसर (डॉ.) शिवाकान्त द्विवेदी,
  जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)।

❖ **प्रधान सम्पादक**

डॉ. मंगलानंद झा,
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)।

कला–वैभव

संयुक्तांक 25–26

अनुक्रमणिका

❖ शुभकामना संदेश

- डॉ. मोक्षदा (ममता) चन्द्राकर, (पद्मश्री से सम्मानित),
  कुलपति, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़।
- प्रो. (डॉ.) इन्द्रदेव तिवारी,
  अधिष्ठाता, कला–संकाय।
- श्री पी. एस. ध्रुव,
  कुलसचिव, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़।

❖ सम्पादकीय

- डॉ. मंगलानंद झा,
  प्रधान संपादक।

❖ अनुक्रमणिका

1.	जनजातियों के खाद्य सामग्री के परिरक्षण एवं संरक्षण का अध्ययन (बस्तर के संदर्भ में)।	डॉ. आनंद मूर्ति मिश्रा शारदा देवांगन	01-16
2.	Masterpieces of Tuman- An Overview.	भागीरथी गादिय डॉ. शंभुनाथ यादव	17-25
3.	Representation of Indian Culture in the novels of Amitav Ghosh and Rohinton Mistry: A Comparative Study.	सी. पी. प्रमोद	26-30
4.	प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में प्रथाओं का प्रभाव।	डॉ. चैन सिंह नागवंशी	31-41
5.	लोक के विविध सन्दर्भ : कुडुख आदिवासी लोकगीतों के सन्दर्भ में।	डॉ. देवमाइत मिंज	42-45
6.	बस्तर की आदिवासी संस्कृति एवं पर्यावरण।	जितेन्द्र साखरे डॉ. एस. के. पाण्डेय	46-53

7.	बारह आभरण।	क्षेत्रपाल गंगवार	54-67
8.	छत्तीसगढ़ की जन–जातीय सांस्कृतिक विरासत।	डॉ. के. के. त्रिपाठी	68-78
9.	रामचरितमानस में पर्यावरणीय चिंतन।	प्रो. डॉ. काशीनाथ तिवारी	79-83
10.	Ecocriticism and Colonialism on Stage: A Reading of Shakespeare's The Tempest and As you like It.	डॉ. कौस्तुभ रंजन	84-93
11.	UNEARTHING THE PAST USING NEW TECHNOLOGY.	KH. Rojy Devi	94-98
12.	संकर्षण और उसकी कृषिमूलकता।	डॉ. मीनू अग्रवाल	99-104
13.	देवार करमा गीतों में चित्रित देवार लोक जीवन।	डॉ. मानक चन्द टंडन	105-109
14.	कलचुरि कालीन धर्म एवं मूर्तिकला।	डॉ. मंगलानंद झा	110-128
15.	Techniqeof Making various artifacts with rope (Shun) and wood in Bedia Tribe.	डॉ. नितीश मिश्रा अंशु माला कीर्ति	129-135
16.	मदकू द्वीप उत्खनन से ज्ञात प्रतिमायें।	डॉ. प्रभात कुमार सिंह प्रवीण तिर्की	136-148
17.	Duties of Devadasis : A Socio Cultural Study.	प्रतिमा मंजरी सेठी	149-153
18.	Habib Tanvir's Charandas Chor : Deciphering Horizon of Moral Uprightness.	पुष्पा मिश्रा डॉ. मधु कामड़ा	154-159
19.	छत्तीसगढ़ी लोक गीतों में लोक परंपरा के तत्त्व।	डॉ. पीसी लाल यादव	160-165
20.	संस्कृते स्त्रोत परम्परा।	डॉ. पूर्णिमा केलकर	166-169
21.	उरांव जनजाति का सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ।	प्रो. प्यारेलाल आदिले के. मुरारीदास	170-173
22.	रामचरितमानस में राजा–प्रजा सम्बन्ध।	डॉ. राजन यादव	174-179
23.	Aspects of Archaeological explorations in District Kushiinagar, U.P.	संदीप कुमार चौधरी दुर्गेश कुमार श्रीवास्तव	180-189
24.	Mapping to Monarchial Hegemonic Department in Medieval Erotic-Sensual Odia –Kavayas.	डॉ. संतोष कुमार मलिक राजेश कुमार साहू	190-202
25.	नारी की समाज में बदलती भूमिका।	डॉ. सविता यादव	203-206

26.	कथक नृत्य के जयपुर घराने की नृत्यगत विशेषता।	संगीता ठाकुर	207-211
27.	आभूषण– परंपरा,प्रयोग एवं निहितार्थ।	डॉ. सुनीता यादव	212-217
28.	चतुष्षष्टि कलाओं में नेपथ्ययोग और उसकी उपयोगिता।	डॉ. वत्सला	218-234
29.	बैगानी करमा गीतों में चित्रित राम कथा।	विनोद कुमार सुधाकर	235-237
30.	महासमुन्द जिले के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और उनका योगदान।	विजय कुमार शर्मा	238-247
31.	परंपरागत शिल्पकला की जीवंत धारा–रतनपुर के कोकस के वंशज।	डॉ. वृषोत्तम साहू प्रदीप साहू	248-249
32.	अग्नि पुराण में वर्णित हस्त मुद्राएँ।	यास्मिन सिंह	250-254
33.	दृश्य काव्य और दृश्य कला का अन्तर संबंध।	डॉ. योगेन्द्र चौबे	255-258
34.	एरण की कहानी – मेरी जुबानी	डॉ. के. के. त्रिपाठी	259-279
35.	पुण्य स्मरण (स्व. प्रो. ए. एल. श्रीवास्तव)	डॉ. के. के. त्रिपाठी	280-282

अग्निपुराण में वर्णित हस्त मुद्रायें

यास्मीन सिंह

❝ धर्म के साथ–साथ नृत्य एवं नाट्य की दृष्टि से अग्निपुराण का विशेष स्थान है। इस पुराण के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि इसमें नृत्य व नाट्य विषयक तत्वों को वर्णन किया गया है। शास्त्रीय नृत्यों में इन सभी तत्वों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये नृत्य–नाट्य तत्व वहीं है, जिनका विशद् वर्णन भरत ने नाट्यशास्त्र एवं अन्य परवर्ती आचार्यों ने अपने–अपने ग्रंथों में सविस्तार किया है। अग्निपुराण में न केवल नृत्य का उल्लेख प्राप्त होता है, अपितु संयुत एवं असंयुक्त हस्त मुद्राओं सहित विभिन्न नृत्यात्मक तथ्यों का वर्णन भी किया गया है। अग्निपुराण में नृत्य–तत्वों का प्राप्त होना, इस बात का प्रमाण है, कि नृत्य प्रारंभ से ही देवताओं का प्रिय रहा है। इसका लोक–मनोरंजन के साथ–साथ ईश्वरीय भक्ति और परम आनन्द की प्राप्ति का सशक्त माध्यम भी माना जाता रहा है।❞

भारत की सनातन सभ्यता और संस्कृति के समानान्तर विभिन्न धर्म, और सम्प्रदायों की स्थापना हुई। इतिहास इस बात का साक्षी है, कि प्राचीन भारत सामाजिक और राजनीतिक रूप से भी अपेक्षाकृत सम्पन्न रहा है। संस्कृति और सभ्यता के ही समानान्तर प्राचीन भारतीय समाज में 'कला' नामक एक ऐसा पक्ष भी रहा है, जिसने सदैव मनुष्य को अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम प्रदान किया। एक जन–प्रचलित उक्ति है, कि 'आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है।' कहीं–न–कहीं मनुष्य ने प्रारंभ में अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ही मानसिक एवं हृदयगत संवेदनाओं की जिस प्रक्रिया को माध्यम के रूप में चुना, उसे 'कला' कहा गया। कला का स्वरूप चाहे जो भी रहा हो, किन्तु कला मानव सभ्यता के समानान्तर चलती रही। एक ओर कला ने जहाँ धर्म के आधार पर मोक्ष प्राप्ति का साधन बनी, वहीं दूसरी ओर सामाजिक रूप से पल्लवित होती कला ने लोक को रंजित भी किया। आवश्यकता, अनकूलता और अभिव्यक्ति के बीच कला के नित नये रूप–स्वरूप ने आकार लिया और मनुष्य की संवेदनाओं को आत्मसात् कर उन्हें उद्घाटित किया।

कला का सर्वप्रथम लिखित प्रमाण वेदों को माना गया है और इसके बाद पुराणों का स्थान आता है। विभिन्न पुराणों में जिन विषयों का भी उल्लेख किया गया है, वह वेदों का ही सार–तत्व है तथा अपेक्षाकृत अधिक विस्तारित है। माना जाता है, कि पुराणों की रचना महर्षि वेदव्यास द्वारा की गई। 'वेदों को पृथक् रूप से संकलित करने के कारण कृष्णद्वैपायन को 'व्यास' नाम से अभिहित किया गया– **'वेदान् विव्यास यस्मात्स वेदव्यास इति स्मृतः।'**'[1]

पुराण काल में शिवपुराण, विष्णु पुराणादि अठ्ठारह पुराणों की रचना की गई, जिनमें समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था आदि विषयों के साथ–साथ लोकजीवन एवं ललित कलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। नृत्य एवं नाट्य की दृष्टि से अग्निपुराण का विशेष स्थान है। इस पुराण के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि इसमें क्रमशः 26वें अध्याय में मुद्राओं के लक्षण; 338वें अध्याय में 'नाटक–निरूपण'; 339वें अध्याय में रस, भाव तथा नायकादि का वर्णन; 340वें अध्याय में 'रीति–निरूपण'; 341वें अध्याय में 'नृत्यादि आदि में उपयोगी आंगिक कर्म'; 342वें अध्याय में 'अभिनय एवं अलंकारों का निरूपण' प्राप्त होता है। शास्त्रीय नृत्यों उपर्युक्त वर्णित सभी तत्व महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, जिनका विषद् वर्णन भरत ने नाट्यशास्त्र एवं अन्य परवर्ती आचार्यों ने अपने–अपने ग्रंथों में सविस्तार किया है।[2]

सर्वप्रथम अग्निपुराण में "मुद्राओं के लक्षण" नामक 26वें अध्याय में 'सांनिध्य' (संनिधापिनी) नामक मुद्रा व इसके भेदों का वर्णन प्राप्त होता है। आचार्य ने सांनिध्य नामक मुद्रा के तीन भेद– "अंजलि मुद्रा", "वन्दनी मुद्रा" और "हृदयानुगा मुद्रा" बताये हैं। ये तीनों ही मुद्रायें हाथों से बनाये जाने का निर्देश भी ग्रंथ में उल्लिखित प्राप्त होता है। विशेष उल्लेखनीय

है, कि नाट्यशास्त्र और अभिनयदर्पण में भी अंजलि नामक संयुत हस्त मुद्रा का उल्लेख प्राप्त होता है। आचार्य भरत के अनुसार– **"पताकाभ्यान्तु हस्ताभ्यां संश्लेषादञजलिः स्मृतः"**[3] दो पताक हस्त मुद्राओं को मिलाने से अंजलि हस्त मुद्रा हो जाती है। आचार्य नन्दिकेश्वर का मत–**"पताकातलयोर्योगादञजलिः कर ईरितः"**[4] भरत से पूर्णतः साम्य है। अग्निपुराण में अंजलि हस्त बनाये जाने की विधि का वर्णन प्राप्त नहीं होता।

'वन्दनी मुद्रा', सांनिध्य मुद्रा का द्वितीय भेद है। आचार्य ने इसकी विस्तृत व्याख्या तो नहीं की है, किन्तु व्याख्याकार के मतानुसार– 'हाथ जोड़कर नमस्कार करना ही 'वन्दनी' मुद्रा है। कमल–मुकुल के समान अंजलि बाँधकर, जब दाहिने अँगूठे से बायें अँगूठे का दबा दिया जाये तो 'वन्दिनी मुद्रा' होती है। इसका प्रयोग नमस्कार के लिए होना चाहिए।'[5] इसी प्रकार तीसरी मुद्रा 'हृदयनुगा' की चर्चा करते हुए आचार्य इसे हस्तों से बनाये जाने की विधि का भी उल्लेख करते हैं, जिसके अनुसार– 'बायें हाथ की मुठ्ठी से दाहिने हाथ के अँगूठे को बाँध लें और बायें अँगुष्ठ को ऊपर उठाये रखें, यही 'हृदयनुगा' मुद्रा है।'[6] आचार्य के मत से हृदयनुगा मुद्रा के दो अन्य नाम 'संरोधिनी' और 'निष्ठुरा' भी हैं। इसी क्रम में आचार्य ने हाथ (व ऊँगलियों) की विभिन्न अवस्थाओं के माध्यम से अन्य आठ हस्त मुद्राओं को बनाये जाने की विधि का भी निरूपण किया है, जिसके अनुसार– 'दोनों हाथों में अँगूठे से कनिष्ठा तक की तीन अँगुलियों का नवाकर कनिष्ठा आदि को क्रमशः मुक्त करने से आठ मुद्रायें बनती हैं।'[7] आचार्य ने इन आठ मुद्राओं को हिन्दी वर्णमाला के 'अ क च ट त प य श' वर्ग में विभाजित किया है। आचार्य ने वर्णमाला के उक्त अक्षरों का बीज 'अं कं चं टं' को बताते हुए कहते हैं कि यदि पाँचों ऊँगलियों को ऊपर करके हाथ को सम्मुख करने से नवीं मुद्रा बनती है, जिसका संबंध आचार्य वर्णमाला के 'क्षं' बीज से स्थापित करते हैं। आचार्य ने उक्त नौ मुद्राओं के अतिरिक्त 'वराह' नामक एक अन्य हस्त मुद्रा की भी चर्चा की है, जिसके अनुसार– 'दाहिने हाथ को ऊपर, बायें हाथ को उतान रखकर उसे धीरे–धीरे नीचे झुकाये जाने पर वराह मुद्रा बनती है।'[8] आचार्य द्वारा निर्देशित उक्त हस्त मुद्राओं के अध्ययन से प्रतीत होता है, कि ये मुद्रायें दोनों हाथों से समान रूप से की जाती हैं। अतः इन्हें संयुत हस्त मुद्रा की श्रेणी में अवस्थित किया जा सकता है। आचार्य के मतानुसार बायीं मुठ्ठी में बंधी एक–एक ऊँगली को क्रमशः मुक्त करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है, कि क्रम से दूसरी ऊँगली को मुक्त करते समय पहली ऊँगली को पुनः सिकोड़ना आवश्यक है, तभी उक्त वर्णित सभी हस्त मुद्रायें सिद्ध हो सकेंगी। आचार्य ने प्रथम तीन मुद्राओं को साधारण तथा अन्य नौ मुद्राओं को असाधारण (विशिष्ट) श्रेणी में विभाजित किया है। हालांकि उक्त बारह हस्त मुद्रायें आचार्य ने व्यूहरचना के संदर्भ में कहीं हैं, किन्तु नृत्य की दृष्टि से भी इनका प्रयोग किये जाने की प्रबल संभावना लक्षित होती है।

अग्निपुराण में नृत्यकला के अंतर्गत आंगिक चेष्टायें अर्थात् अंग–प्रत्यंग कर्म, आभूषण, वस्त्रालंकार एवं वेशभूषा का वर्णन प्राप्त होता है–

"चेष्टाविशेषमप्यङ्गप्रत्यङ्गे कर्म चानयोः।
शरीरारम्भमिच्छनित प्रायः पूर्वोऽवलाश्रयः।।1।।

लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिंचितम्।
मोट्टापितं कुट्टमितं विव्वोको ललितन्तथा।।2।।

विकृतं क्रीड़ित के लिरिति द्वादशधैव सः।
लीलेष्टजन चेष्टानुकरणं संवृतक्षये।।3।।

विशेषान् दर्शयन् किंचिद् विलासः सद्भिरिष्यते।
हसितक्रन्दितादीनां सश्चरः किलकिंचितम्।।4।।

विकारः कोऽपि विव्वाको ललितं सौकुमार्य्यतः।

शिरः पाणिरूरः पार्श्वं कटिरंघ्रिरिति क्रमात्।।5।।

अङ्गानि भ्रूलतादीनि प्रत्यङ्गान्यभिजानते।
अङ्गप्रत्यङ्गयोः कर्म प्रयत्नजनितं विना।।6।।

न प्रयोगः क्वचिन्मुख्यन्तिरश्चीनंच तत् क्वचित्।
आकम्पितं कम्पितंच धूतं विधूतमेव च।।7।।

परिवाहितमाधूतमवधूतमथांचितम्।
निकुंचितं परावृत्तमुक्षिप्तंचापय धोगतम्।।8।।

ललितंचेति विज्ञेयं त्रयोदशविधं शिरः।
भ्रू कर्म सप्तधाज्ञेयं पातनं भ्रूकुटीमुखम्।।9।।

दृष्टिस्त्रिधा रसस्थयिसंचारिप्रतिबन्धना।
षट्त्रिंशद्भेदविधुरा रसजा तत्र चाष्टधा।।10।।

नवधा तारकाकर्म भ्रमणंचलनादिकम्।
षोढ़ो च नासिका ज्ञेया निश्वासो नवधा मतः।।11।।

षोढ़ोष्ठकर्मकं पाद्यं सप्तधा चिबुकक्रिया।
कलुषादिमुखं षोढा ग्रीवा नवविधा स्मृता।।12।।

असंयुतः संयुतश्च भूम्ना हसतः प्रयुज्यते।
पताकास्त्रिपताकश्च तथा वै कर्त्तरीमुखः।।13।।

अर्द्धचन्द्रोत्कशलश्च शुकतुण्डस्तथैव च।
मुष्टिश्च शिखरश्चैव कपित्थः केटकामुखः।।14।।

सूच्यास्यः पद्माकोषोहि शिराः समृगशीर्षकाः।
कामूलकालपद्मौ च चतुरभ्रमरौ तथा।।15।।

हंसास्यहंसपक्षा च सन्दंशमुकुलौ तथा
उर्णनाास्ताम्रचूड़श्चतुर्विंशतित्यिमी।।16।।

असंयुतकराः प्रोक्ताः संयुतास्तु त्रयोदश।
अंजलिश्च कपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा।।17।।

कटको वर्धमानश्चप्यसङ्गो निषधस्तथा।
दोलः पुष्पपुअश्चैव तथा मकर एव च।।18।।

गजदन्तो बहिस्तम्भो वर्धमानोऽपरे कराः।
उरः पंचविधं स्यात् तु आभुग्ननर्त्तनादिकम्।।19।।

उदरं दुरतिक्षामंखण्डं पूर्णमिति त्रिधा।
पार्श्वयोः पंचकर्माणि जंघाकर्म च पंचधा।
अनेकधा पादकर्म नृत्यादौ नाटके समृतम्।।20।।"[9]

उक्त श्लोकों के माध्यम से लीला, विलास, विभ्रम, विच्छित्ति, इत्यादि बारह नायिकाओं के अलंकार बताये गये हैं। नृत्य में शरीर के विभिन्न अंगों के कर्मों का नामोल्लेख करते हुए उनके भेद–प्रभेदों को उपस्थापित किया गया है। व्यास ने नायिकाओं के यौवनकाल में

सहजभाव से उद्भुत होने वाले लीला, विलास, विभ्रमादि 12 अलंकार बताये हैं। तत्पश्चात् सिर, हाथ, वक्षःस्थल, कमर के पार्श्व तथा पैर को 'अंग' कहा है। इसी प्रकार भौंह आदि को 'उपांग' कहा गया है। मुनि के मतानुसार अंग–प्रत्यंगों से प्रयत्नजनित कार्य (चेष्टा विशेष) के बिना नृत्यादि का प्रयोग सफल नहीं होता है। वह कहीं मुख्य रूप में तो कहीं वक्र रूप में अर्थात् प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से साधित होता है। इसके पश्चात् आचार्य ने आकम्पित, प्रकम्ति सहित 13 प्रकार के शिरःकर्म; 7 प्रकार के भ्रू–कर्म; 3 प्रकार के दृष्टि अभिनय; आँख की पुतली के 9 कर्म; नासिका या नाक के 6 कर्म; निःश्वास के 9 कर्म; ओष्ठ के 6 कर्म; पैरों के 6 कर्म; चिबुक के 7 कर्म; ग्रीवा के 9 कर्म बताये हैं। आचार्य ने हस्त मुद्राओं के भेद– संयुत एवं असंयुत बतायें हैं, जिसके अंतर्गत 13 प्रकार के संयुत एवं 24 प्रकार के असंयुत हस्तों का नामोल्लेख प्राप्त होता है। वक्षःस्थल के 5 अभिनय भेद; उदर के 3; पार्श्वभाग एवं जंघा के 5–5 भेद बताते हुए नाट्य–नृत्यादि में पादकर्म के अनेकों प्रकारों के होने की बात कही है।

अग्निपुराण के 342वें अध्याय में आचार्य द्वारा अभिनय एवं इसके चार भेद– सात्विक, वाचिक, आंगिक तथा आहार्य बताते हुए परिभाषित किया है। तत्पश्चात् रसों की चर्चा करते हुए प्रत्येक रस के प्रकारों एवं लक्षणों का बताया गया है।[10] विशेष उल्लेखनीय है, कि आचार्य द्वारा सात रसों के विषय में ही चर्चा की गई है तथा 'अद्भुत रस' का नामोल्लेख प्राप्त नहीं होता। जबकि भरत ने नाट्यशास्त्र में 8 रसों की चर्चा की है एवं परवर्ती आचार्यों द्वारा भरतानुसार बताये गये 8 रसों के के साथ–साथ 'शांत' को रस निरूपित करते हुए 9वाँ रस स्वीकार किया है एवं लक्षण भी बताये हैं।

शास्त्रीय नृत्य में हस्ताभिनयों का विशेष योग होता है। किसी भी शास्त्रीय नृत्य में हस्ताभिनय अर्थात् हाथों से किये जाने वाले अभिनय को महत्त्व दिया जाता रहा है। अग्निपुराण में भी हस्त मुद्राओं के प्रकार और उनके लक्षणों का निर्वचन किया है। पताक, त्रिपताक, कर्तरी मुख सहित चौबीस असंयुत हस्त भेद एवं संयुत हस्तों के अंतर्गत अंजलि, कपोत, कर्कटादि तेरह हस्त मुद्राओं का नामोल्लेख किया है। हस्त मुद्राओं के साथ–साथ वक्षःस्थल, उदर और पार्श्व भाग के अभिनय प्रकारों का स्पष्ट रूप से वर्णन इस पुराण की अद्भुत विशेषता कही जा सकती है। भरत के नाट्यशास्त्र में भी समान रूप से उक्त वर्णित अंगाभिनयों एवं हस्त मुद्राओं का वर्णन प्राप्त होता है।

विशेष उल्लेखनीय है, कि अग्निपुराण में न केवल नृत्य का उल्लेख प्राप्त होता है, अपितु संयुत एवं असंयुक्त हस्त मुद्राओं सहित विभिन्न नृत्यात्मक तथ्यों का वर्णन भी किया गया है। हस्तमुद्राओं को उल्लेख प्रायः नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में प्राप्त होता है, किन्तु अग्निपुराण में इनका प्राप्त होना निश्चित रूप से इस पुराण की विशेषता कही जा सकती है। विद्वानों के मत से पुराणों का रचनाकाल विद्वानों द्वारा 1200ई.पू. से 700ई. के मध्य होना स्वीकार किया गया है।[11] इसके अतिरिक्त विद्वानों ने पुराणों को वर्तमान से लगभग 4000 वर्ष प्राचीन होना स्वीकार किया है। इस संबंध में पं.गिरीधर शर्मा का मत है, कि– 'वैदिक वाङ्मय में जो पुराणों के नाम का प्रसंग आता है वह तो भगवान व्यास से प्राचीन होने के कारण अनादि पुराण वेद को ही कहा जा सकता है; किन्तु भगवान वेदव्यास के अनन्तर के लौकिक वाङ्मय में जो पुराणों का प्रसंग है वह उनके या उनके शिष्यों के रचित पुराणों का ही जा सकता है। इसलिए यह सिद्ध हो जाता है, कि जो पुराण आजकल उपलब्ध हैं वे भी चार हजार वर्षों से अर्वाचीन नहीं कहे जा सकते। समय–समय पर साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण या अपना हठ सिद्ध करने को कई विद्वानों ने उनमें प्रक्षेप किये हैं। मूलभूत पुराण तो अतिप्राचीन ही सिद्ध होते हैं।'[12] अतः पुराणों का प्राचीन होना तो पूर्णतः सिद्ध है, किन्तु समयानुसार इसमें संशोधन भी होते रहे है, ऐसा स्वीकार करना संदेहास्पद नहीं होगा। साथ ही, उक्त पुराणों की एवं संशोधन के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि–

1. अग्निपुराण में लक्षित नृत्य विषयक तत्वों से नाट्यशास्त्र प्रभावित रहा हो।
2. नाट्यशास्त्र में लक्षित नृत्य विषयक तत्वों से अग्निपुराण प्रभावित रहा हो।

3. उक्त दोनों ही ग्रंथ उक्त विषय में किसी तीसरे ग्रंथ पर आश्रित रहे हों।

इसके अतिरिक्त एक बात स्पष्टतः कहीं जा सकती है, कि सभी पुराण निश्चित रूप से वेदों से प्रभावित रहे हैं। इसी प्रकार नाट्यशास्त्र की रचना भी ब्रह्मा द्वारा चारों वेदों के आह्वान करने के फलस्वरूप की गई, जिसके कारण नाट्यशास्त्र को नाट्यवेद अथवा पंचम वेद भी कहा गया।

इस प्रकार अग्निपुराण में नृत्य–तत्वों का प्राप्त होना, इस बात का प्रमाण है, कि नृत्य प्रारंभ से ही देवताओं का प्रिय रहा है। विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यह भी है, कि अग्निपुराण में नाट्यशास्त्रीय हस्त मुद्राओं के अतिरिक्त बारह अन्य हस्त मुद्राओं का भी विवरण प्राप्त होता है। इनमें से 'अंजलि मुद्रा' के अतिरिक्त शेष ग्यारह मुद्रायें नृत्य प्रयोग की दृष्टि से नवीन प्रतीत होती हैं। वस्तुतः नृत्य को लोक–मनोरंजन के साथ–साथ ईश्वरीय भक्ति और परमानन्द की प्राप्ति का सशक्त माध्यम भी माना जाता रहा है। अतः निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है, कि भारतीय संस्कृति प्राचीन समय से समृद्ध रही है और भले ही 'पुराण' बीता हुआ 'कल' हैं, किन्तु इतना विश्वास के साथ कहा जा सकता है, कि पुराणों के सतत् अध्ययन, अन्वेषण से कला का आने वाला 'कल' और भी अधिक समृद्ध हो सकेगा।

सन्दर्भ :–

1. परांजपे, डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर, **"भारतीय संगीत का इतिहास",** चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, तृतीय संस्करण 1994, पृ. 17 ।
2. द्विवेदी, आचार्य शिवप्रसाद, **"अग्निपुराणम् हिन्दीव्याख्योपेतम्"**, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृ. 733–742 ।
3. शास्त्री, बाबूबाल शुक्ल, **"श्रीभरतमुनीप्रणीतं सचित्रम् नाट्यशास्त्रम्"**, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, प्रथम संस्करण संवत् 2035, भाग–2, अध्याय–9, श्लोक 126, पृ. 65 ।
4. गैरोला, वाचस्पति, **"भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनयदर्पण"**, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2006, पृ. 228 ।
5. **"अग्निपुराण"** (मूल संस्कृत का हिन्दी अनुवाद), गीताप्रेस, गोरखपुर, सोलहवाँ पुनर्मुद्रण संवत् 2073, पृ. 48 ।
6. **"अग्निपुराण"** (मूल संस्कृत का हिन्दी अनुवाद), गीताप्रेस, गोरखपुर, सोलहवाँ पुनर्मुद्रण संवत् 2073, पृ. 48 ।
7. **"अग्निपुराण"** (मूल संस्कृत का हिन्दी अनुवाद), गीताप्रेस, गोरखपुर, सोलहवाँ पुनर्मुद्रण संवत् 2073, पृ. 49 ।
8. **"अग्निपुराण"** (मूल संस्कृत का हिन्दी अनुवाद), गीताप्रेस, गोरखपुर, सोलहवाँ पुनर्मुद्रण संवत् 2073, पृ. 49 ।
9. द्विवेदी, आचार्य शिवप्रसाद, **"अग्निपुराणम् हिन्दीव्याख्योपेतम्"**, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, अध्याय 341, श्लोक सं. 1–20, पृ. 739–741 ।
10. वही, अध्याय 342, श्लोक सं. 1–16, पृ. 741–742 ।
11. दुबे, डॉ. हरिनारायण, **"पुराण समीक्षा"**, इन्टरनेशनल इंस्टिट्यूट फॉर डेव्लेपमेंट रिसर्च, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1984, पृ. 46–47 ।
12. चतुर्वेदी, पं.गिरिधर शर्मा, **"पुराण परिशीलन"**, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1998, पृ. 37 ।